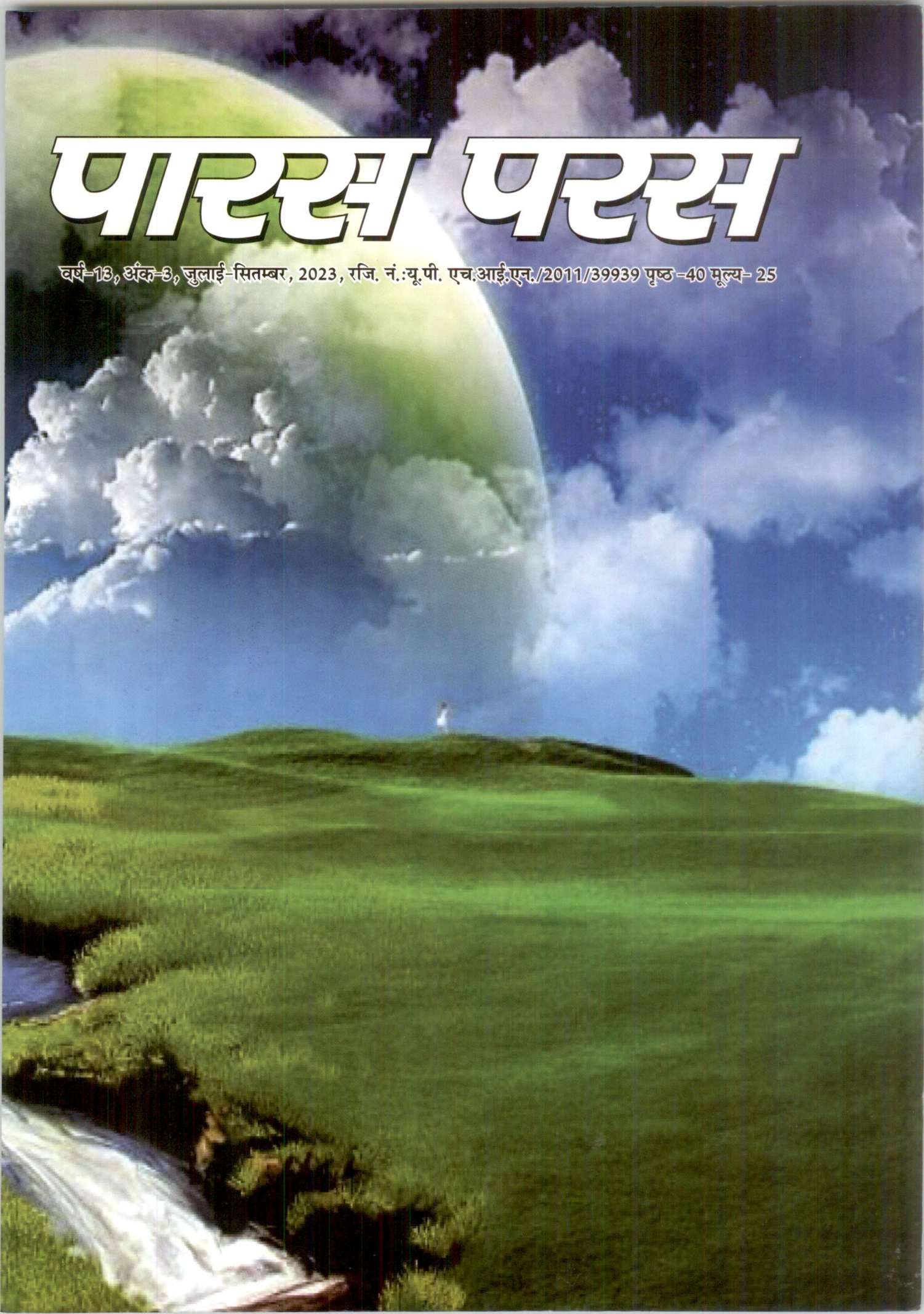

पारस परस

वर्ष-13, अंक-3, जुलाई-सितम्बर, 2023, रजि. नं.:यू.पी. एच.आई.एन./2011/39939 पृष्ठ -40 मूल्य- 25

सृजन स्मरण

भारतेंदु हरिश्चंद्र

जन्म 09 सितम्बर 1850 - निधन 06 जनवरी 1885

बरषा सिर पर आ गई हरी हुई सब भूमि
बागों में झूले पड़े, रहे भ्रमण–गण झूमि

करके याद कुटुंब की फिरे विदेशी लोग
बिछड़े प्रीतमवालियों के सिर पर छाया सोग

खोल–खोल छाता चले लोग सड़क के बीच
कीचड़ में जूते फँसे जैसे अघ में नीच।

वर्ष : 13 अंक : 3 जुलाई-सितम्बर, 2023 रजि. नं. : यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस परस

हिन्दी काव्य की विविध विधाओं
की त्रैमासिक पत्रिका

संरक्षक
डॉ. शम्भुनाथ

प्रधान संपादक
प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित

संपादक
डॉ. अनिल कुमार

कार्यकारी संपादक
सुशील कुमार अवस्थी

संपादकीय कार्यालय
538 क/1324, शिवलोक
त्रिवेणी नगर तृतीय, लखनऊ
मो. 9935930783
Email: paarasparas.lucknow@gmail.com

लेआउट एवं टाइप सेटिंग
मेट्रो प्रिन्टर्स, लखनऊ

स्वामी प्रकाशक मुद्रक एवं संपादक डॉ. अनिल कुमार द्वारा प्रकाश पैकेजर्स, 257, गोलागंज, लखनऊ उ.प्र. से मुद्रित तथा ए-1/15 रश्मि, खण्ड, शारदा नगर योजना, लखनऊ उ.प्र. से प्रकाशित।
सम्पादकः डॉ. अनिल कुमार

पारस परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

संपादकीय		2
श्रद्धा सुमन		
छोड़ गए क्यूँ हमें अकेले	डॉ. अनिल कुमार	4
पुण्य स्मरण		5
कालजयी		
गीत की कड़ी	पारस नाथ पाठक 'प्रसून'	6
यमुना-वर्णन	भारतेन्द्र हरिश्चन्द्र	7
नर हो, न निराश करो मन को	मैथिलीशरण गुप्त	8
तुम्हारे साथ रहकर	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना	9
समय के सारथी		
एक दिन इसी तरह	नीलाभ	10
मारे जाएंगे	राजेश जोशी	11
अभिनय	मंगलेश डबराल	12
कोइे एक पेड तट का	यश मालवीय	13
किराये का घर	नरेन्द्र जैन	14
अंधेरे में देखना	प्रताप सहगल	15
कलरव		
चूहे की दिल्ली यात्रा	रामधारी सिंह दिनकर	16
हम सब सुमन एक उपवन के	द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी	17
बापू	बलबीर सिंह रंग	18
मामा जी की दाढ़ी	सूर्य कुमार पांडेय	19
उदबोधन		
जय राष्ट्रीय निशान	सोहनलाल द्विवेदी	20
भारती वन्दना	सूर्यकांत त्रिपाठी निराला	21
गाँधी बाबा के बिना	वंशीधर शुक्ल	22
मातृभूमि	मैथिलीशरण गुप्त	23
वह देश कौन सा है	रामनरेश त्रिपाठी	24
सुंदर भारत	श्रीधर पाठक	25
नारी स्वर		
दान	एम जोशी हिमानी	26
हे आदिदेव !	डॉ. प्रज्ञा बाजपेयी	27
नदी देखी थी	ज्योत्स्ना मिश्रा	28
अपूर्ण	दीप्ति मिश्र	29
प्रीतम मेरे कब आओगे	भावना तिवारी	30
अब मान भी जाओ	भावना मिश्र	31
नवोदित रचनाकार		
यहां एक सच यह भी	कुमार विक्रम	32
आओ कुछ राहत दें	दिनेश मिश्र	33
मैं गाँव से जा रहा हूँ	निलय उपाध्याय	34
बहादुर माझी	प्रदीप त्रिपाठी	35
भाषा	बसंत त्रिपाठी	36
अतीतजीवी	भोला पंडित प्रणयी	37
पिता	मनोज शर्मा	38
छूट जाता है सिरा	रविशंकर पाण्डेय	39
उस दिन भी...	विवेक चतुर्वेदी	40

सज्जन व्यक्ति निस्पृह होते हैं

एक दिन कार्यालय में मुझसे मिलने एक सज्जन आए। मैं उन्हें पहले से नहीं जानता था। आने के तुरन्त बाद ही उन्होंने विस्तारपूर्वक अपना परिचय दिया और फिर आत्मप्रशंसा प्रारम्भ कर दी, जो काफी देर तक चलती रही। मैंने उनसे निवेदन किया कि मुझसे अभी और कई लोग मिलने के लिए बैठे हैं, साथ ही मुझे और भी काम करने हैं तो उन्होंने "बस एक मिनट" कहते हुए मेरे सामने एक एलबम रख दिया और उसकी तस्वीरों को पलटते हुए एक–एक तस्वीर का इतिहास बताने लगे।

तस्वीरों को देखने के क्रम में एक तस्वीर में मुझे एक ऐसे महानुभाव दिखाई पड़े जिन्होंने सैकड़ों लोककल्याण के काम किये थे पर कभी भी उन कार्यों का श्रेय लेने का प्रयास नहीं किया था। आखिरकार मैंने उन सज्जन से उनके विषय में पूछ ही लिया तो उन्होंने बड़ी चतुराई से जवाब देते हुए कहा कि कभी वे मेरे साथ हुआ करते थे, लेकिन उनका चाल–चलन और रवैया ठीक नहीं था, इसलिए मैंने उन्हें अपने से अलग कर दिया। मैंने कहा कि वे तो बहुत ही सज्जन व्यक्ति हैं तो उन्होंने तपाक से जबाब दिया कि वे सज्जन नहीं हैं, बल्कि सज्जन दिखने का ढोंग करते हैं। मैंने थोड़ी नाराज़गी जाहिर करते हुए कहा कि वे ढोंग करते हैं कि आप कर रहे हैं? सकपकाकर वे मुझसे पूछने लगे कि आप कहना क्या चाहते हैं? मैंने कहा, वही, जो आप अच्छी तरह समझ रहे हैं लेकिन अपने झूठे अहंकार के कारण न समझने का दिखावा कर रहे हैं।

उन्होंने तमतमाते हुए अपना सामान समेटा और कुछ बड़बड़ाते हुए बाहर चले गए। मैं काफी देर तक यही सोचता रहा कि संयोगवश मैं तो उन महानुभाव को जानता हूँ, लेकिन जो लोग उन्हें नहीं जानते होंगे उनके सामने तो यह छद्म सज्जन स्वयं के सज्जन होने का ढोंग करते हुए अपने प्रभाव में ले लेते होंगे और उन्हें बदनाम भी करते होंगे। शायद इसीलिए वर्तमान परिवेश में सज्जन एवं दुर्जन व्यक्ति की पहचान करना कठिन हो गया है, क्योंकि सज्जन व्यक्ति अपनी सज्जनता का न तो प्रचार–प्रसार करता है और न ही इसका ढिंढोरा पीटता है जबकि इसके विपरीत दुर्जन व्यक्ति सज्जन न होते हुए भी सज्जन होने का दिखावा एवं ढकोसला करता है। दुर्जनों के आडम्बर के समक्ष सज्जनों के पास मौन धारण करने के अलावा कोई विकल्प नहीं रह जाता। कहा भी गया है कि–

भद्रं भद्रं कृतं मौनं कोकिलैर्जलदागमे।
वक्तारो दर्दुरा यत्र, मौनं तत्र समाचरेत् ।।

यानि कोयल का वर्षा ऋतु के आगमन पर मौन धारण कर लेना अच्छा है, क्योंकि जिस स्थान पर मेंढक बोल रहे हों वहाँ मौन धारण करना ही श्रेयस्कर है। मध्यकालीन हिन्दी कवि रहीम ने भी इसी बात को निम्नवत् कहा है–

पावस देखि रहीम मन, कोइल साधे मौन।
अब दादुर वक्ता भए, हमको पूछे कौन।।

यहां कोयल को सज्जन व्यक्ति का प्रतिनिधि कहा जा सकता है जबकि मेंढक को दुर्जन व्यक्ति का ।

लेकिन यहां एक सबसे बड़ा सवाल यह उठता है कि क्या सज्जन व्यक्तियों का कोयल की तरह मौन धारण करना मानवता एवं समाज के हित में है? हो सकता है कि सज्जन व्यक्तियों के स्वभाव एवं लक्षण की दृष्टि से उनका मौन रहना उचित हो क्योंकि सज्जन व्यक्ति किसी की मदद करने के बाद उससे धन्यवाद या कृतज्ञता ज्ञापित करने की अपेक्षा नहीं करता अपितु वह तो 'नेकी कर, दरिया में डाल' देने की परम्परा में विश्वास रखता है। वह आस्थावान् है उस परम्परा के प्रति, जहाँ दाहिने हाथ से दान देने वाले व्यक्ति के बाएँ हाथ को दान का पता न चलने पाए। सज्जन

व्यक्ति अपने किसी भी कार्य का श्रेय नहीं लेना चाहता–

सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु।
विद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रतापु।।

बल्कि कोई दूसरा श्रेय लेना चाहता है तो वह उसका प्रतिकार या विरोध भी नहीं करता।

वस्तुतः दुर्जनों के शोर शराबे में सज्जनों का अपनी प्रकृति के अनुकूल मौन रहना श्रेयस्कर तो है, किन्तु तभी तक, जब तक कि दुर्जन उनकी मर्यादा का उल्लंघन न करें। गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' में संकेत किया है –

'सठ सन विनय, कुटिल सन प्रीती। सहज कृपन सन सुन्दर नीती।।
ममतारत सन ज्ञान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी।।
क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा। ऊसर बीज बएँ फल जथा।।'

यही कारण है कि असामाजिक असामान्य व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए ही विभिन्न अनुभूत प्रक्रियाओं के बाद लोकोक्तियों के रुप में **'शठे शाठ्यम् समाचरेत्'** अथवा **'Tit for tat'** का अस्तित्व निरन्तर है। कभी–कभी अहंकार और आत्मश्लाघा के वशीभूत व्यक्ति को उसकी मर्यादा का स्मरण करवाना आवश्यक हो जाता है। मानस में धनुष–भंग के प्रसंग में परशुराम जी द्वारा शिव के धनुष को तोड़ने वाले को दण्डित करने का भय दिखाने पर लक्ष्मण की प्रतिक्रिया को तुलसी कुछ इसी भाव से व्यक्त करते हैं–

लखन कहेउ मुनि सुजस तुम्हारा । तुम्हहिं अछत को बरनै पारा।।
अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी।।

कहते हैं, अहंकार से उपजा विष मर्यादित जीवन को मात्र प्रभावित ही नहीं करता अपितु 'सद्भाव' रूप महत्वपूर्ण अंग को भी निष्क्रिय कर देता है। यही 'सद्भाव' व्यक्ति में अनुस्यूत होकर उसे दुर्जन होने से बचाता है।

'पारस परस' पत्रिका का यह अंक आप सब के हाथों में सौपते हुए मुझे हर्ष की अनुभूति हो रही है। पत्रिका को आप लोगों का स्नेह निरन्तर मिल रहा है। इसके लिए हम उन सब के हृदय से आभारी हैं जिनकी उत्कृष्ट रचनाओं से सुसज्जित होकर पत्रिका का कलेवर तैयार होता है। आशा ही नहीं विश्वास है कि पत्रिका के उत्तरोत्तर बढ़ते कदमों में सदैव आप सब का सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

शुभ कामनाओं के साथ,

डा० अनिल कुमार

छोड़ गए क्यूँ हमें अकेले

डॉ. अनिल कुमार पाठक

छोड़ गए क्यूँ हमें अकेले,
कुल के मुखिया बाबूजी।
समझ न आये, दिल घबराये,
हम हैं दुखिया बाबूजी।।

भरी दुपहरी हुआ अँधेरा,
चारों ओर दुःखों का घेरा।
बीच धार में छोड़ गया है,
मुझे अकेला नाविक मेरा।
संगी–साथी काम न आये,
डूबी नइया बाबूजी।
समझ न आये, दिल घबराये,
हम हैं दुखिया बाबूजी।।

पुष्प–पथों पर काँटे बिखरे,
मिले हमें क्यूँ जख्म ये गहरे।
रोए–बिलखें सभी आत्मजन,
तेरा जाना सबको अखरे।
आत्मसात् दुःख किया सभी ने,
कोई न सुखिया बाबूजी।
समझ न आये, दिल घबराए,
हम हैं दुखिया बाबूजी।।

इतनी जल्दी ही जाना था,
हम सबको यूँ ठुकराना था।
इतना नेह–दुलार दिया क्यूँ,
जीवन भर जब तड़पाना था।
गया चैन,सुख, चली गई–
नयनों की निंदिया बाबूजी।
समझ न आये, दिल घबराए,
हम हैं दुखिया बाबूजी।।

❖❖❖

पं. पारस नाथ पाठक 'प्रसून'

जन्म– 17 जुलाई 1932
निधन– 23 जनवरी 2008

तुम अनादि हो, तुम अनन्त हो, दिग्दर्शक, प्रेरक, अरिहन्त।
अजर, अमर, हे प्राणतत्व! तुम, कण-कण में व्यापी बसन्त।।

शिक्षाविद् व हिन्दी कविता के सशक्त हस्ताक्षर स्व0 पारस नाथ पाठक 'प्रसून' का जन्म उत्तर प्रदेश के जनपद–जौनपुर के गोपालपुर ग्राम में गुरुपूर्णिमा को हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय विद्यालयों से प्राप्त करने के पश्चात उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ, गोरखपुर विश्वविद्यालय तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से विभिन्न उपाधियाँ प्राप्त कीं। वे सर्वोदय विद्यापीठ इण्टर कालेज, मीरगंज, जौनपुर में हिन्दी विषय के प्रवक्ता पद पर कार्यरत रहे।

स्व. 'प्रसून' की पावन स्मृति को अक्षुण्ण रखने के लिए 'पारस परस' नाम से काव्य–त्रैमासिकी प्रकाशित करने का संकल्प लिया गया जो निर्बाध गति से चल रहा है।

स्वर्गीय 'प्रसून' जी की जयन्ती पर विनम्र श्रद्धांजलि

❖❖❖

गीत की कड़ी

पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

गीत की कड़ी, जड़ी सी रह गई।

कवि मौन हो गया, कि चन्द्र सो गया,
न लिख सका समाज की दशा
तारिका खड़ी सी रह गई।।

गीत की कड़ी, जड़ी सी रह गई।।

आकाश देखता रहा,
मेघ अश्रु–नीर सा बहा के रो पड़ा,
कली सिहर के फट गई।।

गीत की कड़ी, जड़ी सी रह गई।।

क्षुब्ध बालकों के भूख–ज्वाल से,
चाँदनी सी बालिका के अंग ताप से,
जेठ की दुपहरी भी झुलस गई।
तो गीत की दशा कहाँ कही गई।।

गीत की कड़ी, जड़ी सी रह गई।।

भिक्षुकों की आर्त्त–आह औ पुकार से,
बन्दियों की एक स्वर भरी हुकार से,
कामिनी की चूड़ियों की तेज धार से,
बादलों की पंक्ति फट गई।

गीत की कड़ी, जड़ी सी रह गई।।

❖❖❖

यमुना-वर्णन

भारतेंदु हरिश्चंद्र

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सों जल–परसन हित मनहु सुहाये
किधौं मुकुर मैं लखत उझकि सब निज–निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा
मनु आतप वारन तीर कौं, सिमिटि सबै छाये रहत।
कै हरि सेवा हित नै रहे, निरखि नैन मन सुख लहत

तिन पै जेहि छिन चन्द जोति रक निसि आवति ।
जल मै मिलिकै नभ अवनी लौं तानि तनावति
होत मुकुरमय सबै तबै उज्जल इक ओभा ।
तन मन नैन जुदात देखि सुन्दर सो सोभा
सो को कबि जो छबि कहि , सकै ता जमुन नीर की ।
मिलि अवनि और अम्बर रहत ,छबि इक सी नभ तीर की

परत चन्द प्रतिबिम्ब कहूँ जल मधि चमकायो ।
लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोइ मन भायो
मनु हरि दरसन हेत चर्न्द जल बसत सुहायो ।
कै तरंग कर मुकुर लिये सोभित छबि छायो
कै रास रमन मैं हरि मुकुट आभा जल दिखरात है ।
कै जल उर हरि मूरति बसति ता प्रतिबिम्ब लखात है

कबहुँ होत सत चन्द कबहुँ प्रगटत दुरि भाजत ।
पवन गवन बस बिम्ब रूप जल मैं बहु साजत ।।
मनु ससि भरि अनुराग जामुन जल लोटत डोलै ।
कै तरंग की डोर हिंडोरनि करत कलोलैं ।।
कै बालगुड़ी नभ में उड़ी, सोहत इत उत धावती ।
कई अवगाहत डोलात कोऊ ब्रजरमनी जल आवती ।

मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटी जात जामुन जल ।
कै तारागन ठगन लुकत प्रगटत ससि अबिकल ।।
कै कालिन्दी नीर तरंग जितौ उपजावत ।
तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत ।।
कै बहुत रजत चकई चालत कै फुहार जल उच्छरत ।
कै निसिपति मल्ल अनेक बिधि उठि बैठत कसरत करत ।

कूजत कहुँ कलहंस कहूँ मज्जत पारावत ।
कहुँ काराणडव उडत कहूँ जल कुक्कुट धावत ।।
चक्रवाक कहुँ बसत कहूँ बक ध्यान लगावत ।
सुक पिक जल कहुँ पियत कहूँ भ्रम्रावलि गावत ।।
तट पर नाचत मोर बहु रोर बिधित पच्छी करत ।
जल पान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब धरत ।

❖❖❖

नर हो, न निराश करो मन को

मैथिलीशरण गुप्त

नर हो, न निराश करो मन को

कुछ काम करो, कुछ काम करो
जग में रह कर कुछ नाम करो
यह जन्म हुआ किस अर्थ अहो
समझो जिसमें यह व्यर्थ न हो
कुछ तो उपयुक्त करो तन को
नर हो, न निराश करो मन को।

संभलो कि सुयोग न जाय चला
कब व्यर्थ हुआ सदुपाय भला
समझो जग को न निरा सपना
पथ आप प्रशस्त करो अपना
अखिलेश्वर है अवलंबन को
नर हो, न निराश करो मन को।

जब प्राप्त तुम्हें सब तत्त्व यहाँ
फिर जा सकता वह सत्त्व कहाँ
तुम स्वत्त्व सुधा रस पान करो
उठके अमरत्व विधान करो
दवरूप रहो भव कानन को
नर हो न निराश करो मन को।

❖❖❖

निज गौरव का नित ज्ञान रहे
हम भी कुछ हैं यह ध्यान रहे
मरणोंत्तर गुंजित गान रहे
सब जाय अभी पर मान रहे
कुछ हो न तजो निज साधन को
नर हो, न निराश करो मन को।

प्रभु ने तुमको कर दान किए
सब वांछित वस्तु विधान किए
तुम प्राप्त करो उनको न अहो
फिर है यह किसका दोष कहो
समझो न अलभ्य किसी धन को
नर हो, न निराश करो मन को।

तुम्हारे साथ रहकर

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

अक्सर मुझे ऐसा महसूस हुआ है
कि दिशाएँ पास आ गई हैं,
हर रास्ता छोटा हो गया है,
दुनिया सिमटकर
एक आँगन–सी बन गई है
जो खचाखच भरा है,
कहीं भी एकांत नहीं
न बाहर, न भीतर।
हर चीज का आकार घट गया है,
पेड़ इतने छोटे हो गए हैं
कि मैं उनके शीश पर हाथ रख
आशीष दे सकता हूँ,
आकाश छाती से टकराता है,
मैं जब चाहूँ बादलों में मुँह छिपा सकता हूँ।
तुम्हारे साथ रहकर
अक्सर मुझे महसूस हुआ है
कि हर बात का एक मतलब होता है,
यहाँ तक कि घास के हिलने का भी,
हवा का खिड़की से आने का,
और धूप का दीवार पर
चढ़कर चले जाने का।
तुम्हारे साथ रहकर
अक्सर मुझे लगा है
कि हम असमर्थताओं से नहीं
संभावनाओं से घिरे हैं,
हर दीवार में द्वार बन सकता है
और हर द्वार से पूरा का पूरा
पहाड़ गुजर सकता है।
शक्ति अगर सीमित है
तो हर चीज अशक्त भी है,
भुजाएँ अगर छोटी हैं,
तो सागर भी सिमटा हुआ है,
सामर्थ्य केवल इच्छा का दूसरा नाम है,
जीवन और मृत्यु के बीच जो भूमि है
वह नियति की नहीं मेरी है।

❖❖❖

एक दिन इसी तरह

नीलाभ

एक दिन इसी तरह किसी फाइल के भीतर
या कविता की किताब के पन्नों में दबा
तुम्हारा खत बरामद होगा

मैं उसे देखूँगा, आश्चर्य से, खुशी से
खोलूँगा उसे, पढ़ूँगा एक बार फिर
कई–कई बार पढ़े पुरानी बातों के किस्से

तुम्हारी लिखावट और तुम्हारे शब्दों के सहारे
मैं उतर जाऊँगा उस नदी में
जो मुझे तुमसे जोड़ती है
जिसके साफ–शफ्फाफ नीले जल में
घुल गई हैं घटनाएँ, प्रसंग और अनुभव
घुल गई हैं बहसें और झगड़े

एक दिन इसी तरह किसी फाइल में
किसी किताब के पन्नों में
बरामद होगा तुम्हारा खत

मैं उसे खोलूंगा
झुर्रीदार हाथों की कँपकँपाहट के बावजूद
आँखों की ज्योति मन्द हो जाने पर भी
मैं पढ़ सकूँगा तुम्हारा खत
पढ़ सकूँगा वे सारे खत
जो तुमने मुझे लिखे
और वे भी
जो तुमने नहीं लिखे

एक दिन इसी तरह
तुम्हारा खत होगा और मैं

❖❖❖

मारे जाएँगे

राजेश जोशी

जो इस पागलपन में शामिल नहीं होंगे, मारे जाएँगे

कठघरे में खड़े कर दिये जाएँगे
जो विरोध में बोलेंगे
जो सच–सच बोलेंगे, मारे जाएँगे

बर्दाश्त नहीं किया जाएगा कि किसी की कमीज हो
उनकी कमीज से ज्यादा सफेद
कमीज पर जिनके दाग नहीं होंगे, मारे जाएँगे

धकेल दिये जाएंगे कला की दुनिया से बाहर
जो चारण नहीं होंगे
जो गुण नहीं गाएंगे, मारे जाएँगे

धर्म की ध्वजा उठाने जो नहीं जाएँगे जुलूस में
गोलियां भून डालेंगी उन्हें, काफिर करार दिये जाएँगे

सबसे बड़ा अपराध है इस समय निहत्थे और निरपराधी होना
जो अपराधी नहीं होंगे, मारे जाएँगे

❖❖❖

अभिनय

मंगलेश डबराल

एक गहन आत्मविश्वास से भरकर
सुबह निकल पड़ता हूँ घर से
ताकि सारा दिन आश्वस्त रह सकूँ
एक आदमी से मिलते हुए मुस्कराता हूँ
वह एकाएक देख लेता है मेरी उदासी
एक से तपाक से हाथ मिलाता हूँ
वह जान जाता है मैं भीतर से हूँ अशांत
एक दोस्त के सामने खामोश बैठ जाता हूँ
वह कहता है तुम दुबले बीमार क्यों दिखते हो
जिन्होंने मुझे कभी घर में नहीं देखा
वे कहते हैं अरे आप टी०वी० पर दिखे थे एक दिन।

बाजारों में घूमता हूँ निःशब्द
डिब्बों में बन्द हो रहा है पूरा देश
पूरा जीवन बिक्री के लिए
एक नई रंगीन किताब है जो मेरी कविता के
विरोध में आई है।
जिसमें छपे सुन्दर चेहरों को कोई कष्ट नहीं
जगह जगह नृत्य की मुद्राएँ हैं विचार के बदले
जनाब एक पूरी फिल्म है लम्बी
आप खरीद लें और भरपूर आनन्द उठाएँ।

शेष जो कुछ है अभिनय है
चारों ओर आवाजें आ रही हैं
मेकअप बदलने का भी समय नहीं है
हत्यारा एक मासूम के कपड़े पहनकर चला आया है
वह जिसे अपने पर गर्व था
एक खुशामदी की आवाज में गिड़गिड़ा रहा है
ट्रेजडी है संक्षिप्त लम्बा प्रहसन
हरेक चाहता है किस तरह झपट लूँ
सर्वश्रेष्ठ अभिनेता का पुरस्कार ।

❖❖❖

कोई एक पेड़ तट का

यश मालवीय

कोई एक पेड़ तट का
कद हमारा नाप जाता है
हमारी झील का समतल
हवा में काँप जाता है।

बहुत से मिथ उजागर कर
सवेरा धुँध में खोए
बड़ी तस्कीन मिलती है
अँधेरा फूटकर रोए

जो मन को निर्वसन करता
वही फिर ढाँप जाता है।

जेहन में बर्फ गिरती
सोच में आकाश आ बैठे
कोई 'एहसास' ठिठुरा
गठरियों–सा पास आ बैठे

हमारी रुह की
जलती लकड़ियाँ ताप जाता है।

बहुत–कुछ कौंधता है
कौंध कर, करता किनारा फिर
उसी इक कौंधने को
हम नहीं पाते दुबारा फिर

समझ पाते नहीं हम
और अपना 'आप' जाता है।

❖❖❖

किराए का घर

नरेन्द्र जैन

जैसे उसने
ढूँढ़ लिया हो किराए का घर
और वह घर
उसे पसन्द आ गया हो
इस तरह थकान आती है अपने
माल–असबाब के संग
और जिस्म में घर कर जाती है।

हम अन्तरंग पड़ोसी की तरह रहने लगते हैं
थकान को वहाँ रहते हुए देख
मैं कभी–कभार पूछता रहता हूं
उसकी खैरियत
वह मेरा शुक्रिया अदा करती है
और पूछती है मुझसे मेरे हालचाल।

मेरे स्नायुतँत्र, माँसपेशियों
रक्त–संचार
माथे की दुखती रग
निद्रा
और मेरे दुःस्वप्नों से गहरा लगाव है उसे

हालत ये है कि
जिस्म की आदत में शुमार हो गई है थकान
उसका होना
यहाँ किसी दोस्त के होने से कम नहीं।

❖❖❖

अंधेरे में देखना

प्रताप सहगल

जब आप एक लम्बी सड़क पर
चलते–चलते थक जाएं
फिर भी रुकें नहीं
और आपके तलुवों से
संगीत सुनाई देने लगे।

जब आप एक शिखर पर चढ़ें
और साथ ही
दूर चोटी पर
एक सुनहरा कलश दिखाई देने लगे।

जब जीवन की रेल–पेल
और ठेलम–ठेल को झेलते
सड़क के किनारे खामोश खड़े
एक आदमी की आंखों में
मासूम बच्चा फुदकता
शिशु हाथों से बुलाता दिखे।

जब तमाम अंधेरे के बावजूद
आपके अन्दर
चटख रंग का कोई फूल उगे
तो सच जानिए
आपके पास वह आंख है
जो अंधेरे में देखना जानती है।

❖❖❖

चूहे की दिल्ली-यात्रा

रामधारी सिंह दिनकर

चूहे ने यह कहा कि चूहिया! छाता और घड़ी दो,
लाया था जो बड़े सेठ के घर से, वह पगड़ी दो।
मटर–मूँग जो कुछ घर में है, वही सभी मिल खाना,
खबरदार, तुम लोग कभी बिल से बाहर मत आना!
बिल्ली एक बड़ी पाजी है रहती घात लगाए,
जाने वह कब किसे दबोचे, किसको चट कर जाए।
सो जाना सब लोग लगाकर दरवाजे में किल्ली,
आजादी का जश्न देखने मैं जाता हूँ दिल्ली।
चूँ–चूँ–चूँ, चूँ–चूँ–चूँ, चूँ–चूँ–चूँ,

दिल्ली में देखूँगा आजादी का नया जमाना,
लाल किले पर खूब तिरंगे झंडे का लहराना।
अब न रहे, अंग्रेज, देश पर अपना ही काबू है,
पहले जहाँ लाट साहब थे वहाँ आज बाबू है!
घूमूँगा दिन–रात, करूँगा बातें नहीं किसी से,
हाँ फुर्सत जो मिली, मिलूँगा जरा जवाहर जी से।
गाँधी युग में कौन उड़ाए, अब चूहों की खिल्ली?
आजादी का जश्न देखने मैं जाता हूँ दिल्ली।
चूँ–चूँ–चूँ, चूँ–चूँ–चूँ, चूँ–चूँ–चूँ,

पहन–ओढ़कर चूहा निकला चुहिया को समझाकर,
इधर–उधर आँखें दौड़ाईं बिल से बाहर आकर।
कोई कहीं नहीं था, चारों ओर दिशा थी सूनी,
शुभ साइत को देख हुई चूहे की हिम्तत दूनी।
चला अकड़कर, छड़ी लिये, छाते को सिर पर ताने,
मस्ती मन की बढ़ी, लगा चूँ–चूँ करके कुछ गाने!
इतने में लो पड़ी दिखाई कहीं दूर पर बिल्ली,
चूहेराम भगे पीछे को, दूर रह गई दिल्ली।
चूँ–चूँ–चूँ, चूँ–चूँ–चूँ, चूँ–चूँ–चूँ,

❖❖❖

हम सब सुमन एक उपवन के

द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी

हम सब सुमन एक उपवन के
एक हमारी धरती सबकी
जिसकी मिट्टी में जन्मे हम
मिली एक ही धूप हमें है
सींचे गए एक जल से हम।
पले हुए हैं झूल–झूल कर
पलनों में हम एक पवन के
हम सब सुमन एक उपवन के।।

रंग रंग के रूप हमारे
अलग–अलग है क्यारी–क्यारी
लेकिन हम सबसे मिलकर ही
इस उपवन की शोभा सारी
एक हमारा माली हम सब
रहते नीचे एक गगन के
हम सब सुमन एक उपवन के।।

सूरज एक हमारा, जिसकी
किरणें उसकी कली खिलातीं,
एक हमारा चांद चांदनी
जिसकी हम सबको नहलाती।
मिले एकसे स्वर हमको हैं,
भ्रमरों के मीठे गुंजन के
हम सब सुमन एक उपवन के।।

काँटों में मिलकर हम सबने
हँस हँस कर है जीना सीखा,
एक सूत्र में बंधकर हमने
हार गले का बनना सीखा।
सबके लिए सुगन्ध हमारी
हम श्रंगार धनी निर्धन के
हम सब सुमन एक उपवन के।।

❖❖❖

बापू

बलबीर सिंह रंग

चरवाहे–सी लाठी पकड़े, चिकनी पतली छोटी,
बप्पा जैसी घड़ी कमर में, ताऊ जैसी धोती।

मुंशी जी की तरह लगी है, ऐनक भी आँखों पर,
तेरी जैसी चप्पल पहने, नानी जैसी चादर।

चेहरे से लगता है, मानो कई जन्म से मौन हैं।
अम्माँ! बतला दे मुझको–'यह बाबा जैसे कौन हैं?'

ये जीवन की कर्मभूमि में कर्मवीर बन आए,
ये दुख की दोपहरी में, सुख के समीर बन आए।

ये आए हैं मानवता के सोए–भाग्य जगाने,
ये आए हैं दुखिया धरती–माँ के फंद छुड़ाने।

सत्य–बीन से राग अहिंसा का हैं मंत्र सुनाते,
मोहन के हैं दास, विश्व के 'बापू' हैं कहलाते।

❖❖❖

मामा जी की दाढ़ी

सूर्यकुमार पांडेय

कौए से भी ज़्यादा काली
स्याही से भी गाढ़ी है,
गालों को ढककर बैठी
यह मामा जी की दाढ़ी है।

आधे उजले, आधे काले
बाल हो गये हैं खिचड़ी,
बे–तरतीब घने जंगल–सी
उगी हुई यह बहुत बड़ी।
सीधी–उलटी, दायें–बायें
कुछ तिरछी कुछ आड़ी है।

जब भी गोदी में चढ़ता मैं
यह मुझको छू जाती है,
तब गुदगुदी बहुत मचती है
हँसी नहीं रुक पाती है।
सच मानो, यह दाढ़ी लगती
ज्यों काँटों की झाड़ी है।

❖❖❖

जय राष्ट्रीय निशान

सोहनलाल द्विवेदी

जय राष्ट्रीय निशान!
जय राष्ट्रीय निशान!!!
लहर लहर तू मलय पवन में,
फहर फहर तू नील गगन में,
छहर छहर जग के आंगन में,
सबसे उच्च महान!
सबसे उच्च महान!
जय राष्ट्रीय निशान!!
जब तक एक रक्त कण तन में,
डिगे न तिल भर अपने प्रण में,
हाहाकार मचावें रण में,
जननी की संतान
जय राष्ट्रीय निशान!
मस्तक पर शोभित हो रोली,
बढे शूरवीरों की टोली,
खेलें आज मरण की होली,
बूढे और जवान
बूढे और जवान!
जय राष्ट्रीय निशान!
मन में दीन–दुःखी की ममता,
हममें हो मरने की क्षमता,
मानव मानव में हो समता,
धनी गरीब समान
गूंजे नभ में तान
जय राष्ट्रीय निशान!
तेरा मेरा मेरुदंड हो कर में,
स्वतन्त्रता के महासमर में,
वज्र शक्ति बन व्यापे उस में,
दे दें जीवन–प्राण!
दे दें जीवन प्राण!
जय राष्ट्रीय निशान!!

❖❖❖

भारती वन्दना

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

भारति, जय, विजय करे
कनक–शस्य–कमल धरे!

लंका पदतल–शतदल
गर्जितोर्मि सागर–जल
धोता शुचि चरण–युगल
स्तव कर बहु अर्थ भरे!

तरु–तण वन–लता–वसन
अंचल में खचित सुमन
गंगा ज्योतिर्जल–कण
धवल–धार हार लगे!

मुकुट शुभ्र हिम–तुषार
प्राण प्रणव ओंकार
ध्वनित दिशाएँ उदार
शतमुख–शतरव–मुखरे!

❖❖❖

गाँधी बाबा के बिना

वंशीधर शुक्ल

हमरे देसवा की मँझरिया ह्वैगै सूनि,
अकेले गाँधी बाबा के बिना।
कौनु डाटि के पेट लगावै, कौनु सुनावै बात नई,
कौनु बिपति माँ देय सहारा, कौनु चलावै राह नई,
को झँझा माँ डटै अकेले, बिना सस्त्र संग्राम करै,
को सब संकट बिथा झेलि, दुसमन का कामु तमाम करै।
सत्य अहिंसा की उजेरिया ह्वैगै सूनि,
अकेले गाँधी बाबा के बिना।
अँगरेजी सासन के हटतै, आई नई विपति भारी,
तब अकेलि जिमिदारी डाहै, अब डाहै सब अँधियारी,
तब चाँदी ताँबे का सिक्का, अब कागज की भरमारी,
तब भुँइ बनी रहै साखिन की, अब अधिवासी भँइधारी।
हमरी आसा की डगरिया ह्वैगै सूनि,
अकेले गाँधी बाबा के बिना।
तब तौ पर्वत की मड़इन माँ, होइ न चोरी बटमारी,
अब सहरन मा कठिन जिंदगी, गली गली ठगई भारी,
डाकू लोफर खूँगर बाढ़े, सबै दिसा भै अँधियारी,
न्याय इमान सत्यता उड़िगै, जीवन जन्म भवा भारी।
सिगरी दुनिया लागै नीरसि धुँवारि,
अकेले गाँधी बाबा के बिना।
अकिले बाबा के उठतै खन, जानौ भारत भा खाली,
सबके भीतर संका ब्यापी, जनु धरि डहुँकी कंगाली,
कोई न्याय न बिपति सुनैया, डगमग नैया भारत की,
चारिउ वार अराजकता है, लूट फूँक स्वारथ रत की।
जानौ परिगै सारे साँसन मा भँगारि,
अकेले गाँधी बाबा के बिना।

❖❖❖

मातृभूमि

मैथिलीशरण गुप्त

नीलांबर परिधान हरित पट पर सुन्दर है।
सूर्य–चन्द्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर है
नदियाँ प्रेम प्रवाह, फूल तारे मंडन हैं।
बंदीजन खग–वृन्द, शेषफन सिंहासन है
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेष की।
हे मातृभूमि! तू सत्य ही, सगुण मूर्ति सर्वेश की
जिसके रज में लोट–लोट कर बड़े हुये हैं।
घुटनों के बल सरक–सरक कर खड़े हुये हैं
परमहंस सम बाल्यकाल में सब सुख पाये।
जिसके कारण धूल भरे हीरे कहलाये
हम खेले–कूदे हर्षयुत, जिसकी प्यारी गोद में।
हे मातृभूमि! तुझको निरख, मग्न क्यों न हों मोद में?
पा कर तुझसे सभी सुखों को हमने भोगा।
तेरा प्रत्युपकार कभी क्या हमसे होगा?
तेरी ही यह देह, तुझी से बनी हुई है।
बस तेरे ही सुरस–सार से सनी हुई है
फिर अन्त समय तू ही इसे अचल देख अपनायेगी।
हे मातृभूमि! यह अन्त में तुझमें ही मिल जायेगी
निर्मल तेरा नीर अमृत के से उत्तम है।
शीतल मंद सुगंध पवन हर लेता श्रम है
षट्ऋतुओं का विविध दृश्ययुत अद्भुत क्रम है।
हरियाली का फर्श नहीं मखमल से कम है
शुचि–सुधा सींचता रात में, तुझ पर चन्द्रप्रकाश है।
हे मातृभूमि! दिन में तरणि, करता तम का नाश है
सुरभित, सुन्दर, सुखद, सुमन तुझ पर खिलते हैं।
भाँति–भाँति के सरस, सुधोपम फल मिलते है
औषधियाँ हैं प्राप्त एक से एक निराली।
खानें शोभित कहीं धातु वर रत्नों वाली
जो आवश्यक होते हमें, मिलते सभी पदार्थ हैं।
हे मातृभूमि! वसुधा, धरा, तेरे नाम यथार्थ हैं
क्षमामयी, तू दयामयी है, क्षेममयी है।
सुधामयी, वात्सल्यमयी, तू प्रेममयी है
विभवशालिनी, विश्वपालिनी, दुःखहत्री है।
भय निवारिणी, शान्तिकारिणी, सुखकत्री है
हे शरणदायिनी देवि, तू करती सब का त्राण है।
हे मातृभूमि! सन्तान हम, तू जननी, तू प्राण है
जिस पृथ्वी में मिले हमारे पूर्वज प्यारे।
उससे हे भगवान! कभी हम रहें न न्यारे
लोट–लोट कर वहीं हृदय को शान्त करेंगे।
उसमें मिलते समय मृत्यु से नहीं डरेंगे
उस मातृभूमि की धूल में, जब पूरे सन जायेंगे।
होकर भव–बन्धन–मुक्त हम, आत्म रूप बन जायेंगे

❖❖❖

वह देश कौन सा है

रामनरेश त्रिपाठी

मन–मोहिनी प्रकृति की गोद में जो बसा है।
सुख–स्वर्ग–सा जहाँ है वह देश कौन–सा है?

जिसका चरण निरंतर रतनेश धो रहा है।
जिसका मुकुट हिमालय वह देश कौन–सा है?

नदियाँ जहाँ सुधा की धारा बहा रही हैं।
सींचा हुआ सलोना वह देश कौन–सा है?

जिसके बड़े रसीले फल, कंद, नाज, मेवे।
सब अंग में सजे हैं, वह देश कौन–सा है?

जिसमें सुगंध वाले सुंदर प्रसून प्यारे।
दिन रात हँस रहे है वह देश कौन–सा है?

मैदान, गिरि, वनों में हरियालियाँ लहकती।
आनंदमय जहाँ है वह देश कौन–सा है?

जिसकी अनंत धन से धरती भरी पड़ी है।
संसार का शिरोमणि वह देश कौन–सा है?

सब से प्रथम जगत में जो सभ्य था यशस्वी।
जगदीश का दुलारा वह देश कौन–सा है?

पृथ्वी–निवासियों को जिसने प्रथम जगाया।
शिक्षित किया सुधारा वह देश कौन–सा है?

❖❖❖

सुंदर भारत

श्रीधर पाठक

भारत हमारा कैसा सुंदर सुहा रहा है
शुचि भाल पै हिमाचल, चरणों पै सिंधु–अंचल
उर पर विशाल–सरिता–सित–हीर–हार–चंचल
मणि–बद्धनील–नभ का विस्तीर्ण–पट अचंचल
सारा सुदृश्य–वैभव मन को लुभा रहा है
भारत हमारा कैसा सुंदर सुहा रहा है।

उपवन–सघन–वनालि, सुखमा–सदन, सुखाली
प्रावृट के सांद्र धन की शोभा निपट निराली
कमनीय–दर्शनीया कृषि–कर्म की प्रणाली
सुर–लोक की छटा को पृथिवी पे ला रहा है
भारत हमारा कैसा सुंदर सुहा रहा है।

सुर–लोक यहीं पर, सुख–ओक है यहीं पर
स्वाभाविकी सुजनता गत–शोक है यहीं पर
शुचिता, स्वधर्म–जीवन, बेरोक है यहीं पर
भव–मोक्ष का यहीं पर अनुभव भी आ रहा है
भारत हमारा कैसा सुंदर सुहा रहा है।

हे वंदनीय भारत, अभिनंदनीय भारत
हे न्याय–बंधु, निर्भय, निर्बंधनीय भारत
मम प्रेम–पाणि–पल्लव–अवलंबनीय भारत
मेरा ममत्व सारा तुझमें समा रहा है
भारत हमारा कैसा सुंदर सुहा रहा है।

❖❖❖

दान

एम जोशी हिमानी

बेटी को विदा करती है मां
अपनी रूह को हथेली में रखकर
जिसको पाला था बेटे की तरह
उसका आज दान कर दिया
कितनी क्रूर है यह
पितृसत्तात्मक व्यवस्था
यहां बेटियों का दान होता है
जैसे गौ–दान, भू–दान,
वस्त्र–दान, स्वर्ण–दान....
कन्या का मात्र
दान ही नहीं होता
उसका कुल–गोत्र–जाति
सब साथ में
दान हो जाती है
अब पिता के घर में
पूजा होगी,कथा होगी,
हवन होगा
और भी
बहुत कुछ होगा
बेटी को भी
न्यौता जायेगा
पर मंत्रों में उसका
उच्चारण न होगा
वह गूंजेगी अब केवल
माता–पिता की
धड़कनों में
यह बात कहने को
बहुत हल्की व
छोटी है
लेकिन पूछो उस मां से
जो दान होते समय
पीछे छोड़ आई थी
इक दिन खुद भी
अपने सभी
प्रतीक.

❖❖❖

हे आदिदेव !

डॉ. प्रज्ञा बाजपेयी

जब द्वार मति के बंद हुए, तो तुम काहे को बुत बने
जब हर क्षण मेरे साथ चले, तो तुम हमको कैसे ना दिखे
हे आदिदेव ! हे प्रभु मेरे
तुम हमको पहले ना मिले ।

जब चक्रव्यू में हम फसे, तो रौद्ररूप काहे ना धरे
ये छल कपट ये मायाजाल, ये नारी पर लगे सवाल
हे आदिदेव ! हे प्रभु मेरे
तुम काहे को धैर्य धरे।

जब कटु वचन के तीर चले, तो तुम काहे को मौन धरे
जब मन की ब्यथा ना समझे कोए, तुमसे अच्छा ना जाने कोए।
हे आदिदेव ! हे प्रभु मेरे
तुम क्यूं पर्वत पर ध्यान करे।

जब जीत मिले ना प्रीत मिले, तो तुमसे ही विश्वास मिले
जब डगर डगर बिपदा पड़े, तो महादेव ही प्रबल करे।
हे आदिदेव ! देवों के देव
तुम हमको कैसे ना दिखे ।

वो बिपदा के बीच खड़े, तुमको जो सारे बोध हुए
तू न समझे हे भक्त मेरे ! वो महादेव के बोल थे ।
वो चक्रव्यूह में फसे हुए, तुमने जो भी तंत्र किये
तू न समझे हे भक्त मेरे ! महादेव ने संकेत दिए

जब द्वार मति के बंद हुए, कैसे निकले तुम संकट से
तू न समझे हे भक्त मेरे ! जब नजर न आए देव तेरे
तुम आदिदेव की छांव में थे
पगडण्डी पर जो निशां मिले ! वो आदिदेव के पाँव के थे
तेरी हर संकट हर बिपदा में, आदिदेव बस डटे रहे।

❖❖❖

नदी देखी थी

ज्योत्स्ना मिश्रा

मैंने कभी तुम्हें बताया नहीं
कि कभी–कभी सो जाती हूँ
तुम्हारी आँखों की कहानियाँ पढते–पढते
तो सुबह लगता है कि सपने में
नदी देखी थी
चेहरा छुओ तो नम मिलता है।
मैनें कभी तुम्हें बताया नहीं
कि कभी–कभी पीती हूँ
तुम्हारे एक टूटे से खयाल को
सिगरेट की तरह।
कलेजे में भर लेती हूँ
आखिरी कसैले कश तक
और साँसे रोक लेती हूँ
तुम्हें रोकने की कोशिश में
मैंने कभी तुम्हें बताया नहीं
कि कभी–कभी मैं सोचती हूँ
तुम गली के मोड़ के
अमलतास से झड़े
फूलों का गुच्छा हो।
और लहूलुहान कर लेतीं हूँ,
उँगलियाँ सड़क की रगड़ से,
तुम्हें उठाने की कोशिश में।
मैंने तुम्हें कभी बताया नहीं
कि कभी–कभी मुझे लगता है
कि मैं दिन रात आठों प्रहर
युद्ध में हूँ
अपनी उखड़ती सांसों से
अपनी आँखों के नमकीन पानी से,
अपने होठों के कोनों पर रुकी
सहमी मुस्कुराहट से,
अपनी नींदों से
सुबहों से, शामों से
खुद से!
और
तुम से!

❖❖❖

अपूर्ण

दीप्ति मिश्र

हे सर्वज्ञाता, सर्वव्यापी, सार्वभौम !
क्या सच में तुम सम्पूर्ण हो ?
हाँ कहते हो तो सुनो ––
सकल ब्रह्माण्ड में
यदि कोई सर्वाधिक अपूर्ण है
तो वह तुम हो ।
होकर भी नहीं हो तुम।
बहुत कुछ शेष है अभी,
बहुत कुछ होना है जो घटित होना है।
उसके बाद ही तुम्हें सम्पूर्ण होना है।
हे परमात्मा !
मुझ आत्मा को विलीन होना है अभी तुममें।
मेरा स्थान अभी रिक्त है तुम्हारे भीतर।
फिर तुम सम्पूर्ण कैसे हुए?
तुममें समा कर मैं शायद पूर्ण हो जाऊँ
किन्तु तुम?
तुम तो तब भी अपूर्ण ही रहोगे
क्योंकि ––
मुझ जैसी कितनी आत्माओं की रिक्तता से
भरे हो तुम ।
जाने कब पूर्ण रूप से भरेगा तुम्हारा यह––
रीतापन , खालीपन
जाने कब तक ?
जाने कब तक ?

❖❖❖

प्रीतम मेरे कब आओगे

भावना तिवारी

टीस उठे हिय भीतर लोचन, अथक बहाएँ आँसू!
प्रीतम मेरे कब आओगे, सोच–सोच रह जाऊँ!

चढ़ी पालकी पलकों वाली,
रैन दुल्हन बन आई!
नयन हठीले मण्डप त्यागें,
नींद रही अनब्याही!
जीवन से सपनों का नाता, जोड़–जोड़ रह जाऊँ!
प्रीतम मेरे कब आओगे, सोच–सोच रह जाऊँ!

अन्तर्मन की व्यथा अनोखी,
अधर नहीं कह पाए!
प्राणों से प्राणों की दूरी,
हृदय नहीं सह पाए!
आने वाले हर पंथी को, टोक–टोक रह जाऊँ!
प्रीतम मेरे कब आओगे, सोच–सोच रह जाऊँ!

पीर भरे दो हाथ दर्द की,
साँकल खटकाते हैं!
मन की चौखट छूकर जाते
तन को तरसाते हैं!
एक हँसी को तरस गया मन, घोंट–घोंट रह जाऊँ!
प्रीतम मेरे कब आओगे, सोच–सोच रह जाऊँ!

एक दिवस सौ सदी सरीखा,
मन में भ्रम भरता है!
साँसों का आगमन व्यर्थ ही
जीवन कम–कम करता है!
हुआ क्यूँ उनसे झूठा परिचय, कोस–कोस रह जाऊँ!
प्रीतम मेरे कब आओगे, सोच–सोच रह जाऊँ!

❖❖❖

अब मान भी जाओ

भावना मिश्र

तुम्हारा नाराज होना यूँ होता है जैसे
सारे सुन्दर फूलों ने फेर लिया हो चेहरा
कि सुबह की ताजी हवा ने
ठान ली हो जिद
बगैर छूए ही गुजर जाने की
नरम दोपहरी जैसे
उलटे पाँव लौट गई हो
खिड़कियों से.

देखो ना, आज चिड़ियों ने भी नहीं
चखा अपना दाना–पानी
तुम्हारा सुग्गा भी बैठा है '
गर्दन में मुँह घुसाए
अलसाई बैठी है गली में गाय
टुकुर टुकुर देखती बासी रोटी..

अब मान भी जाओ
कितने काम रुके हैं
एक तुम्हारी मुसकान पर।

❖❖❖

यहां एक सच यह भी

कुमार विक्रम

बस अभी अभी मैंने विषपान किया
यह विष अब मेरी धमनियों में उतर
मेरे खून का हिस्सा होकर
सारे शरीर में गिलहरियों की तरह
दौड़ेगा कूदेगा बैठेगा सोएगा

लेकिन मेरे चेहरे की कांति
उस पर बिखरी फैली आभा पर
कोई असर नहीं दिखेगा।

क्योंकि अधपढ़ शहरी की भांति
सबके बीचों बीच
रेलवे प्लेटफॉर्म पर बैठ
अपना थैला खोल
सबके सामने मैं पानी की बोतल
नहीं निकालता हूँ
मेरे गंदे शर्ट मेरी पीली पैंट
मेरा पुराना लाल तौलिया
मटमैली चप्पल
यह सब मैं दिखने नहीं देता हूँ

क्योंकि मेरे पास है क्रेडिट कार्ड
और मैं करता हूँ सफर
बड़े हल्के होकर
मेरे धमनियों का विष ही है काफी
मेरे सफर की जरूरतों के लिए
सफर के बोझ के लिए
चेहरे की कांति बनाए रखने के लिए

❖❖❖

आओ कुछ राहत दें

दिनेश मिश्र

आओ कुछ राहत दें इस क्षण की पीड़ा को,
क्योंकि नये युग की तो बात बड़ी होती है।
अपने हैं लोग यहाँ बैठो कुछ बात करो,
मुश्किल से हीं नसीब ऐसी घड़ी होती है।

दर्द से लड़ाई की काँटों से भरी डगर
एक शुरुआत करें आज रहे ध्यान मगर,
झूठे पैगम्बर तो मौज किया करते हैं
ईसा के हाथों में कील गड़ी होती है।

हमराही हिम्मत से बीहड़ को पार करो
आहों के सौदागर तबकों पर वार करो
जिनको हम शेर समझ डर जाया करते हैं
अक्सर तो भूसे पर खाल मढ़ी होती है।

संकल्पों और लक्ष्य बीच बड़ी दूरी है
मन है मजबूर मगर कैसी मजबूरी है,
जब तक हम जीवन की गुत्थी को सुलझाएँ
अपनी अगवानी में मौत खड़ी होती है।

❖❖❖

मैं गाँव से जा रहा हूँ

निलय उपाध्याय

मैं गाँव से जा रहा हूँ

कुछ चीजें लेकर जा रहा हूँ
कुछ चीजें छोड़कर जा रहा हूँ

मैं गाँव से जा रहा हूँ

किसी सूतक का वस्त्र पहने
पाँच पोर की लग्गी काँख में दबाए

मैं गाँव से जा रहा हूँ

अपना युद्ध हार चुका हूँ मैं
विजेता से पनाह माँगने जा रहा हूँ।

मैं गाँव से जा रहा हूँ।

खेत चुप हैं
हवा खामोश, धरती से आसमान तक
तना है मौन, मौन के भीतर हाँक लगा रहे हैं
मेरे पुरखे... मेरे पित्तर, उन्हें मिल गई है
मेरी पराजय, मेरे जाने की खबर

मुझे याद रखना
मैं गाँव से जा रहा हूँ ।

❖❖❖

बहादुर माझी

प्रदीप त्रिपाठी

पुरखों ने बतियाना बंद कर दिया है
वे बोलते हैं अब देह की भाषा में

ठक बहादुर माझी
अपनी भाषा को बोलने वाले अंतिम व्यक्ति थे

ठक बहादुर के साथ
दुनिया की एक भाषा भी चुपचाप चली गई
चला गया थोड़ा सा पहाड़
थोड़ी सी नदी
थोड़े से नमक के साथ
चला गया जीवन का शोरगुल भी।

देखते–देखते
चली गई दुनिया के भूगोल से एक भाषा की आत्मा

चले गए पुरखे–पुरनिया
अब देह की भाषा भी चली गई उनके साथ

मैं भाषा की अदालत में खड़ा होकर
माफी मांगता हूं।

किसी भाषा के प्रति श्रद्धांजलि व्यक्त करना
हमारे समय का सबसे बड़ा अपराध है।

❖❖❖

भाषा

बसंत त्रिपाठी

मेरे पास
कुछ दुख हैं
बहुत सारा गुस्सा है
जिसे बाँध रखा है
मेरी ही सुविधाओं की समझाइश ने

थोड़ा सब्र है
थोड़ी हड़बड़ी है
कुछ उनींदी रातें
बहुत–से पराजित दिन हैं
और चिढ़ी हुई–सी कई शामें हैं।

अधूरे गीत हैं कुछ
जरूरी रीत हैं कुछ
सबसे अंत में खड़े होने की एक सहमी मुद्रा है
कुछ सवाल भी
कि जिसके उत्तर दिए जाते बार–बार
लेकिन हर बार अधूरे
कई सारे लोगों के चेहरे हैं
नजरों ने जिनके दुखों को छुआ
और सपनों में देर तक सुबकते रहे।

मैं अपनी प्यास को तुम्हारे रिसते घावों और
भागते पाँवों में
रखना चाहता हूँ ।
मेरे पास
एक भाषा है
जागे सोए बोलते बड़बड़ाते
चुप हो जाते
शब्दों की भाषा।

❖❖❖

अतीतजीवी

भोला पंडित प्रणयी

सुबह की धूप सेंकती मेरी देह
अब गरमा गई है
और तेरी याद मुझे भरमा गई है
गुलमोहर की छाँह में पसरी
चितकबरी धूप की तरह तेरी याद
मुझे शरमा गई है ।

मेरा मानसरोवर जम गया है
और मेरा राजहंस
पंख फड़फड़ाने लगा है ।

तुम अब भी उसी परिचित गली में खड़ी
लुका–छिपी के खेल में प्रतीक्षारत हो
और मैंने पीछे
अपनी कोमल हथेलियों से
तुम्हारी आँखें बंद कर दी हैं ।

और तुमने मेरी चिरपरिचित गंध से
मुझे पहचान लिया है ।
तुम्हारी धड़कन तेज हो गई है
सागर की लहरों की तरह ।

यह सच है
हमारा मिलन जहाँ भी होता
वहाँ हमारा घर नहीं होता
हम अकेले होते शब्द मौन होते
और साँसें विरल हो
हमारे जीवन को संजीवित रखतीं ।

आज समय की नदी में
मेरी व्यथाएँ तिरती हैं
कई उपधाराओं से मुड़कर भी
तुम तक नहीं पहुँच पाना
तुम्हारी याद मेरे दुःख
पानी की तरह बहते हैं ।

❖❖❖

पिता

मनोज शर्मा

प्रत्येक व्यक्ति का एक पिता होता है
और उन्हें ले, एक अंतर्मन
जैसे स्मृतियाँ
जिन्हें धरोहर, पहचान, जरूरत कहा जा रहा है
पिता, इतने अधिक आते हैं
कि किसी मोड़ पर पता चलना ही बंद हो जाता है
आप पुत्र हैं या पिता
वैसे, इस प्रतिरूप को शाबाशी दी जाती है

जिन पहाड़ियों पर आप चढ़ना चाहते हैं
वहाँ पहले से पिता का झंडा फहराता है
पिता, आपकी तमाम हसरतों के पिता हैं
जब आपके बाल झड़ने लगते हैं
आपको मान लिया जाता है
हूबहू पिता

जो प्रेत आपकी नींद में आता है
तड़कसार, पिता में बदल जाता है
उस भोर
आप, उनके तमाम जीवन के श्रम पे
गर्वीले नहीं, घबराए होते हैं
जीवन के उरूज तक चलने वाले
घटक हैं पिता
पिता, अपनी महानता में
ऐसा सप्तक रचते हैं
जहाँ कोमल स्वर भी, तीव्र हैं

वे, दिहाड़ीदार हैं
मुँह का निवाला तक छोड़ते
आँसू छिपाते हैं
सहर्ष, खतरे उठाते हैं
आप में छोड़ अपना आपा
चले जाते हैं

❖❖❖

छूट जाता है सिरा

रविशंकर पाण्डेय

छूट जाता है सिरा

जिंदगी का
ऊन सा उलझा हुआ
गोला गिरा,
अगर पकड़ो
यह सिरा तो
छूट जाता वह सिरा!

स्वप्न सब
साकार होने के लिए
हैं छटपटाते,
किन्तु मन की बात
आखिर हम
किसे कैसे बताते
डर लगा रहता
कहीं कोई
कहे न सिरफिरा!

बीतता दिन
हादसों सा
रात दहशत सी ढली,
है हमेशा
बनी रहती
तन बदन में खलबली
अगर
दुखती नब्ज पकड़ो
बदन उठता है पिरा!

एक अंधी दौड़ में
बस बीतते हैं
रात दिन,
जिन्दगी की यह पहेली
सुलझना–
कितना कठिन
एक कंकड़
कर न दें कुछ
स्वाद मुँह का किरकिरा!

❖❖❖

उस दिन भी...

विवेक चतुर्वेदी

नहीं रहेंगे हम
एक दिन धरती पर
उस दिन भी खिले
हमारे हिस्से की धूप
और गुनगुना जाए।

देहरी पर चिड़िया आए
उस दिन भी और
हाथ से दाना चुग जाए।

आँगन में उस दिन
न लेटे हों हम
पर छाँव नीम के पेड़ की
चारपाई पर झर जाए।

शाम घिरे उस दिन भी
भटक कर आवारा बादल आएँ
मिट्टी को भिगा जाएँ।

नहीं रहेंगे हम एक दिन
पर उस दिन भी...

❖❖❖

सृजन स्मरण

मैथिली शरण गुप्त

जन्म- 03 अगस्त 1885, निधन- 12 दिसम्बर 1965

भू–लोक का गौरव प्रकृति का पुण्य लीला–स्थल कहाँ ?
फैला मनोहर गिरी हिमालय और गंगाजल जहाँ।
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है,
उसका कि जो ऋषिभूमि है, वह कौन ? भारत वर्ष है

हाँ, वृद्ध भारतवर्ष ही संसार का सिरमौर है,
ऐसा पुरातन देश कोई विश्व में क्या और है ?
भगवान की भव–भूतियों का यह प्रथम भण्डार है,
विधि ने किया नर–सृष्टि का पहले यहीं विस्तार है

यह पुण्य भूमि प्रसिद्ध है, इसके निवासी आर्य हैं
विद्या, कला–कौशल्य सबके, जो प्रथम आचार्य हैं।
संतान उनकी आज यद्यपि, हम अधोगति में पड़े
पर चिन्ह उनकी उच्चता के, आज भी कुछ हैं खड़े।

सृजन स्मरण

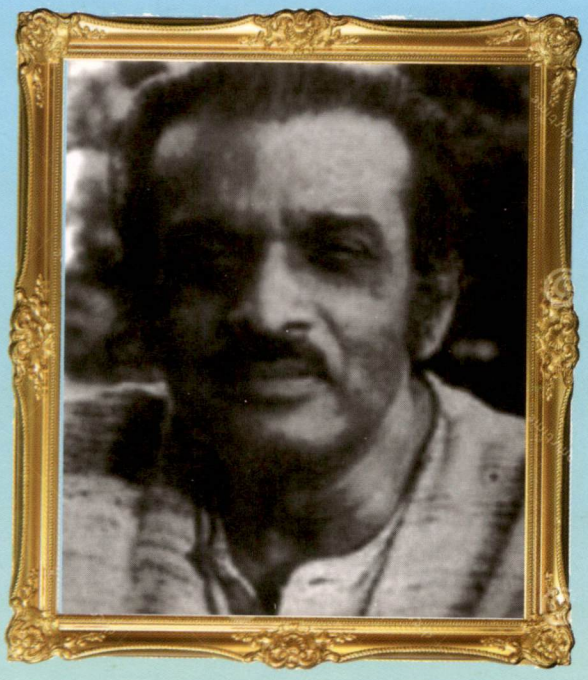

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

जन्म-15 सितम्बर, 1927 - निधन-24 सितम्बर, 1983

ढोल की लय धीमी होती जा रही है
धीरे–धीरे एक क्रांति–यात्रा
शव–यात्रा में बदल रही है।

सड़ाँध फैल रही है
नक्शे पर देश के
और आँखों में प्यार के
सीमांत धुँधले पड़ते जा रहे हैं
और हम चूहों–से देख रहे हैं।